पर्यायें क्रमबद्ध भी होती हैं और अक्रमबद्ध भी[1]

पूर्वपक्षका प्रश्न—द्रव्योंमें होनेवाली सभी पर्यायें नियतक्रमसे ही होती हैं या अनियतक्रमसे भी ?

उत्तरपक्षका उत्तर—द्रव्योंमें होनेवाली सभी पर्यायें नियतक्रमसे ही होतीं हैं ।

समीक्षा

पर्यायोंका विवरण

१. प्रवचनसारके दूसरे ज्ञेयतत्त्वाधिकारकी[2] गाथा १ में बतलाया है कि विश्वमें एक आकाश, एक धर्म, एक अधर्म, असंख्यात काल, अनन्त जीव और अनन्त पुद्गलरूप जितने पदार्थ हैं उन्हें द्रव्य कहते हैं। प्रत्येक द्रव्यमें स्वतःसिद्ध अनन्त गुण हैं। तथा प्रत्येक द्रव्यमें द्रव्य-पर्यायें व प्रत्येक द्रव्यके प्रत्येक गुणमें गुणपर्यायें होती हैं। तत्त्वार्थसूत्रके "गुणपर्ययवद्द्रव्यं" (५-३८) सूत्रका भी यही अभिप्राय है।

२. तत्त्वार्थसूत्रके "सद्द्रव्यलक्षणम्" (५-२९) सूत्रमें द्रव्यका लक्षण "सत्" कहा है तथा द्रव्यका स्वतःसिद्ध स्वभाव होनेसे गुण भी "सत्" कहलाता है। प्रत्येक द्रव्यमें व प्रत्येक द्रव्यके प्रत्येक गुणमें प्रतिक्षण उत्पाद, व्यय और ध्रौव्यरूपसे परिणमन होता रहता है। द्रव्य और गुणकी स्व-स्व उत्तरपर्यायके विकासको उत्पाद और पूर्वपर्यायके विनाशको व्यय कहते हैं। द्रव्यों और गुणोंमें ये उत्पाद और व्यय दोनों उनकी द्रव्यरूपता और गुणरूपताको सुरक्षित रखकर ही होते हैं। अतः द्रव्य और गुणमें ध्रौव्यरूपता भी सतत् बनी रहती है। यही कारण है कि तत्त्वार्थसूत्रके "उत्पादव्ययध्रौव्ययुक्तं सत्" (५–३०) सूत्रमें सत्का लक्षण ऐसा ही निर्धारित किया गया है।

पर्यायोंकी द्विरूपता :

सभी द्रव्यपर्यायें स्व-परप्रत्यय ही होती हैं तथा सभी गुणपर्यायोंमेंसे षट्गुणहानि-वृद्धिरूप पर्यायें स्वप्रत्यय और इनके अतिरिक्त शेषगुणपर्यायें स्व-परप्रत्यय ही होतीं हैं। जो पर्याय निमित्तकारणभूत बाह्य सामग्रीकी सहायतापूर्वक उपादानकारणजन्य हो उसे स्व-परप्रत्यय और जो पर्याय निमित्तकारणभूत बाह्यसामग्रीकी सहायताके बिना उपादानकारणजन्य हो उसे स्वप्रत्यय कहते हैं। पर्यायका-विभाजन कालद्रव्यकी अखण्ड पर्यायभूत समयसापेक्ष होनेसे द्रव्य और गुणकी प्रत्येक पर्याय समयवर्ती मानी गई है।

उभय पर्यायोंकी आगमद्वारा पुष्टि :

तत्त्वार्थसूत्रके "निष्क्रियाणि च" (५-७) सूत्रकी टीका सर्वार्थसिद्धिमें व नियमसारकी गाथा १४ के उत्तरार्द्धमें पर्यायोंके स्वप्रत्यय और स्व-परप्रत्यय दो भेद स्पष्ट स्वीकार किये गये हैं।

पर्यायोंकी उत्पत्तिमें नियतक्रमता और अनियतक्रमताका निर्णय :

यतः स्वप्रत्यय पर्यायोंकी उत्पत्ति निमित्तनिरपेक्ष स्वप्रत्ययताके आधारपर होती है, अतः वह नियतक्रमसे ही होती है और स्व-परप्रत्यय पर्यायोंकी उत्पत्ति निमित्तसापेक्ष स्वप्रत्ययताके आधारपर होती है, अतः वह निमित्तोंके समागमके अनुसार नियतक्रमसे भी होती है और अनियतक्रमसे भी होती है।

---

१. वीरसेवामन्दिर-ट्रस्ट, वाराणसी, द्वारा प्रकाशित, १९८४ ई०।

२. अत्थो खलु दव्वमओ दव्वाणि गुणप्पगाणि भणिदाणि ।
तेहिं पुणो पज्जाया पज्जयमूढा हि परसमया ॥१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

स्व-परप्रत्यय पर्यायोंकी अन्य आगमवचनों द्वारा पुष्टि :

समयसारके सर्वविशुद्धज्ञानाधिकारकी गाथा ३०८ से ३११ तककी आत्मख्याति टीकामें "जीवो हि तावत् क्रमनियमितात्मपारिणामैरुत्पद्यमानो जीव एव नाजीवः, एवमजीवोऽपि क्रमनियमितात्मपरिणामैरुत्पद्यमानोऽजीव एव न जीवः" यह कथन पाया जाता है। इस कथनमें विद्यमान "जीव एव नाजीवः" और "अजीव एव न जीवः" इन दोनों अंशोंसे ज्ञात होता है कि जीवकी पर्यायें अजीवकी सहायतापूर्वक और अजीवकी पर्यायें जीवकी सहायतापूर्वक उत्पन्न होतीं हैं। यदि ऐसा न माना जावे, तो उक्त कथनके ये दोनों अंश निरर्थक हो जायेंगे, क्योंकि जीवको अजीवरूप और अजीवको जीवरूप माननेका प्रसंग तभी उपस्थित होता है जब जीवकी पर्यायोंका अजीवके साथ और अजीवकी पर्यायोंका जीवके साथ निमित्त-नैमित्तिकभावरूप कार्य-कारणसम्बन्ध माना जावे। समयसार-कलश १९५ में स्पष्ट कहा गया है कि जीवका प्रकृतियोंके साथ जो बन्ध होता है वह जीवके अज्ञानभावका ही माहात्म्य है। समयसारकी गाथा ३१२-१३ में तो और भी स्पष्ट लिखा है कि जीव प्रकृतिके निमित्त (सहयोग) से उत्पन्न और विनष्ट होता है व प्रकृति जीवके निमित्त (सहयोग) से उत्पन्न और विनष्ट होती है। समयसारकी गाथा ८०, ८१ और १०५ तथा प्रवचनसारके ज्ञेयाधिकारकी गाथा ७७ से भी स्व-परप्रत्यय पर्यायोंका स्पष्ट समर्थन होता है।

इसके अलावा जयपुर (खानिया) तत्त्वचर्चाकी समीक्षा (भाग–१) के अन्तर्गत प्रश्नोत्तर–१की समीक्षामें मैंने तर्क और आगम प्रमाणोंके आधारसे निमित्तोंके प्रेरक और उदासीन (अप्रेरक) दो भेद बतलाकर उनके लक्षण इस रूपमें निर्धारित किये हैं कि प्रेरक निमित्त वे हैं जिनके साथ उपादानके कार्यकी अन्वय और व्यतिरेक व्याप्तियाँ हों तथा उदासीन निमित्त वे हैं जिनकी उसी कार्यके साथ अन्वय और व्यतिरेक व्याप्तियाँ हों। इन लक्षणोंके अनुसार वहींपर मैंने यह भी स्पष्ट किया है कि प्रेरकनिमित्तोंके बलसे कार्य आगे-पीछे भी किया जा सकता है तथा अनुकूल उदासीन निमित्तोंका भी यदि उपादानको सहयोग प्राप्त न हो तो उस उपादानकी विवक्षित कार्यरूप परिणति नहीं होती है। इससे भी निर्णीत होता है कि निमित्तसापेक्ष स्वप्रत्ययताके आधारपर ही स्व-परप्रत्यय पर्यायोंकी उत्पत्ति होती है। इसका स्पष्टीकरण उदाहरणों द्वारा किया जाता है—

१. पठनकी योग्यताविशिष्ट शिष्यकी पठनक्रिया प्रेरकनिमित्तकारणभूत अध्यापककी सहायतासे होती है, उसकी सहायताके बिना नहीं होती। तथा वहाँ यदि उदासीन निमित्तकारणभूत प्रकाशका अभाव हो तो न अध्यापक पढ़ा सकता है और न शिष्य पढ़ सकता है। इसी प्रकार चलनेकी योग्यताविशिष्ट रेलगाड़ी प्रेरकनिमित्तकारणभूत इंजनके चलनेपर ही चलती है, उसके अभावमें नहीं चलती, तथा वहाँ यदि उदासीन निमित्तकारणभूत रेलपटरीका सहयोग प्राप्त न हो तो न इंजन चल सकता है और न रेलगाड़ी चल सकती है। इस विवेचनके अनुसार स्व-परप्रत्यय पर्यायोंकी उत्पत्ति प्रेरक और उदासीन निमित्तोंकी सहायतापूर्वक होनेके कारण उन स्व-परप्रत्यय पर्यायोंकी उत्पत्तिमें क्रमबद्धता अर्थात् नियतक्रमता और अक्रमबद्धता अर्थात् अनियतक्रमता दोनों ही प्रकारकी व्यवस्था निश्चित होती है।

२. प्रेरक निमित्तकारणभूत कुम्भकार अन्य प्रेरक और उदासीन निमित्तकारणोंकी सहायतापूर्वक घटरूप परिणत होनेकी योग्यता विशिष्ट मिट्टीसे क्रमशः स्थास, कोश और कुशल पर्यायोंकी उत्पत्तिपूर्वक ही संकल्पित घटको उत्पन्न करता है, तथा आवश्यक होनेपर वह कुम्भकार उसी मिट्टीसे विवक्षित सकोरा आदिको भी उत्पन्न करता है। इतना ही नहीं, यदि दंडका आघात आदि कारण मिल जायें तो चालू कार्यके

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विनाश आदि कार्य भी उत्पन्न हो जाते हैं। इसी तरह क्रोधकर्मका उदय रहते क्रोध, मान, माया और लोभरूप परिणत होनेकी योग्यता विशिष्ट जीवकी क्रोधपर्याय होते-होते यदि मान, माया या लोभ कर्मका उदय हो जावे तो क्रोध पर्याय रुककर उस जीवकी यथायोग्य मान, माया या लोभ पर्याय होने लगती है। इस विवेचनके अनुसार भी स्व-परप्रत्यय पर्यायोंकी उत्पत्ति प्रेरक और उदासीन निमित्तोंकी सहायतापूर्वक होनेके कारण उन स्व-परप्रत्यय पर्यायोंकी उत्पत्तिमें क्रमबद्धता अर्थात् नियतक्रमता और अक्रमबद्धता अर्थात् अनियतक्रमता दोनों ही प्रकारकी व्यवस्था निर्णीत होती है।

३. पकनेकी योग्यता विशिष्ट आम्रफलका पाक ऋतुके अनुसार समयपर होनेका नियम है, परन्तु उस आम्रफलको यदि कृत्रिम ऊष्माका योग मिल जावे तो वह असमयमें भी पक जाता है। इसी प्रकार मरणकी योग्यताविशिष्ट संसारी जीवका मरण आयुकर्मके स्थितिबन्धके अनुसार आयुकी समाप्तिपर होना निश्चित है, परन्तु यदि विषपान आदिका योग मिल जावे तो जीव असमयमें भी मरणको प्राप्त हो जाता है। इस विवेचनके अनुसार भी स्व-परप्रत्यय पर्यायोंकी उत्पत्ति प्रेरक और उदासीन निमित्तोंकी सहायतापूर्वक होनेके कारण उन स्व-परप्रत्यय पर्यायोंकी उत्पत्तिमें क्रमबद्धता अर्थात् नियतक्रमता और अक्रमबद्धता अर्थात् अनियतक्रमता दोनों ही प्रकारकी व्यवस्था सिद्ध होती है।

यहाँ 'असमय' शब्दका अर्थ नियतसमयसे भिन्न अनियतसमय ही ग्रहण करना युक्त है, समयसे भिन्न अन्य निमित्तकारणभूत पदार्थ ग्रहण करना युक्त नहीं है—जैसा कि उत्तरपक्ष मानता है। इतना अवश्य है कि जिस पर्यायकी उत्पत्ति उस अनियतसमयमें होती है वह अनुकूल निमित्तकारणसापेक्ष ही होती है।

उत्तरपक्षकी दृष्टिमें स्व-परप्रत्यय पर्यायोंकी उत्पत्तिकी व्यवस्था :

१. समयसारके सर्वविशुद्धज्ञानाधिकारकी ३०८ से ३३१ तककी गाथाओंकी आत्मख्याति-टीकाके पूर्वोक्त कथनके अंशभूत दोनों "क्रमनियमितात्मपरिणामैः" पदोंमें विद्यमान "क्रमनियमित" शब्दका डॉ० हुकमचन्द्र भारिल्लने अपनी "क्रमबद्धपर्याय" पुस्तकमें पृष्ठ १२३ पर यह स्पष्टीकरण किया है कि "क्रमनियमितशब्दमें क्रम अर्थात् क्रमसे (नम्बरवार) तथा नियमित अर्थात् निश्चित। जिस समय जो पर्याय आनेवाली है वही आयेगी इसमें फेरफार नहीं हो सकता। उत्तरपक्ष भी यही मानता है। इस प्रकार ज्ञात होता है कि उत्तरपक्ष आत्मख्याति-टीकाके उक्त क्रमनियमित शब्दके आधारपर प्रत्येक स्व-परप्रत्यय पर्यायकी उत्पत्तिका नियत समय मानकर अपना यह मत निश्चित करता है कि सभी स्व-परप्रत्यय पर्यायोंकी उत्पत्ति स्वप्रत्यय पर्यायोंकी उत्पत्तिके समान क्रमबद्ध अर्थात् नियतक्रमसे ही होती है, अक्रमबद्ध अर्थात् अनियतक्रमसे नहीं होती।

२. सम्पूर्ण द्रव्योंकी त्रैकालिक स्व-परप्रत्यय पर्यायें सर्वज्ञके केवलज्ञानमें प्रतिसमय युगपत् (एकसाथ) क्रमबद्ध ही प्रतिभाषित होती हैं, अतः उन पर्यायोंकी उत्पत्तिको स्वप्रत्यय पर्यायोंकी उत्पत्तिके समान क्रमबद्ध अर्थात् नियतक्रमसे ही मानना युक्त हैं, अन्यथा अर्थात् उन स्व-परप्रत्यय पर्यायोंकी उत्पत्तिको अक्रमबद्ध अर्थात् अनियतक्रमसे स्वीकार करनेपर प्रत्येक द्रव्यकी त्रैकालिक उन पर्यायोंकी केवलज्ञानमें प्रतिसमय युगपत् (एकसाथ) क्रमबद्ध प्रतिभासित होना असम्भव हो जायेगा, फलतः इस तर्कके आधारसे वह अपना यह मत निश्चित करता है कि स्व-परप्रत्यय पर्यायोंकी उत्पत्ति स्व-प्रत्यय पर्यायोंकी उत्पत्तिके समान क्रमबद्ध अर्थात् नियतक्रमसे ही होती हैं, अक्रमबद्ध अर्थात् अनियतक्रमसे नहीं होती।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

निष्कर्ष—

यद्यपि उत्तरपक्षके समान पूर्वपक्ष भी कार्त्तिकेयानुप्रेक्षा[1] व आचार्य रविषेण रचित पद्मपुराणके[2] प्रतिपाद्य विषयको प्रमाण मानता है, तथापि ऊपर जो विवेचन किया गया है उससे यह निष्कर्ष निकलता है कि जहाँ पूर्व पक्ष स्व-परप्रत्यय पर्यायोंकी उत्पत्तिमें जिस देश और जिस कालमें पर्याय उत्पन्न हुई, उत्पन्न हो रही है या उत्पन्न होगी उस देश और उस कालको महत्व न देकर उपादान कारणभूत अन्तरंग सामग्रीके साथ निमित्तकारणभूत बाह्य सामग्रीको महत्व देता है, वहाँ उत्तरपक्ष उस स्व-परप्रत्यय पर्यायकी उत्पत्तिमें उपादानकारणभूत अन्तरंग सामग्रीको महत्व देते हुए भी निमित्तकारणभूत बाह्य सामग्रीको महत्व न देकर उस देश और उस कालको महत्त्व देता है जिस देश और जिस कालमें वह पर्याय उत्पन्न हुई, उत्पन्न हो रही है या उत्पन्न होगी।

पूर्वपक्ष स्व-परप्रत्यय पर्यायकी उत्पत्तिमें उक्त देश और कालको महत्व न देकर जो उपादानकारणभूत अन्तरंगसामग्रीके साथ निमित्तकारणभूत बाह्य सामग्रीको महत्व देता है। उसमें हेतु यह है कि वह पक्ष उस पर्यायकी उत्पत्तिमें उस देश और उस कालको नियामक नहीं मानता है जिस देश और जिस कालमें उस पर्यायकी उत्पत्ति हुई, हो रही है या होगी। तथा वह पक्ष उस पर्यायकी उत्पत्तिमें उपादानकारणभूत अन्तरंग सामग्रीको उस पर्यायरूप परिणत होनेके आधारपर और निमित्तकारणभूत बाह्य सामग्रीको उपादानकी उस पर्यायरूप परिणतिमें सहायक होनेके आधारपर नियामक मानता है। इसके विपरीत उत्तरपक्ष उस स्व-परप्रत्यय पर्यायकी उत्पत्तिमें उपादानकारणभूतअन्तरंग सामग्रीको महत्त्व देते हुए भी निमित्तकारणभूत बाह्यसामग्रीको महत्व न देकर जो उक्त देश और कालको महत्व देता है उसमें हेतु यह है कि वह पक्ष उस पर्यायकी उत्पत्तिमें उपादानको उस पर्यायरूप परिणत होनेके आधारपर नियामक मानते हुए भी निमित्तकारणभूत सामग्रीको उस पर्यायरूप परिणत न होने और उपादानकी उस पर्यायरूप परिणतिमें सहायक भी न होनेके आधारपर सर्वथा अकिंचित्कर मानते हुए नियामक न मानकर केवलज्ञानसे ज्ञात होनेके आधारपर उस देश और उस कालको ही नियामक मानता है जिस देश और जिस कालमें वह पर्याय उत्पन्न हुई, उत्पन्न हो रही है या उत्पन्न होगी। प्रकृतमें दोनों पक्षोंके मध्य यही मतभेद है।

तथ्यका निर्णय :

स्वप्रत्यय और स्व-परप्रत्यय दोनों ही प्रकारकी पर्यायोंको उत्पत्तिमें जिस देश और जिस कालमें वे पर्यायें उत्पन्न हुई, उत्पन्न हो रही हैं या उत्पन्न होंगी उस देश और उस कालको नियामक न माना जाकर स्वप्रत्यय पर्यायकी उत्पत्तिमें मात्र उपादानकारणको व स्व-परप्रत्ययपर्यायकी उत्पत्तिमें उपादानकारणके साथ निमित्तकारणको भी नियामक मानना युक्त है, क्योंकि कार्यकी उत्पत्तिकी नियामक वही वस्तु हो सकती है

---

१. जं जस्स जम्मि देसे जेण विहाणेण जम्मि कालम्मि।
णादं जिणेण णियदं जम्मं वा अह व मरणं वा॥ ३२१॥
तं तस्स तम्मि देसे तेण विहाणेण तम्मि कालम्मि।
का सक्कइ चालेदुं इंदो वा अह जिणिंदो वा॥ ३२२॥

२. प्रागेव यदवाप्तव्यं येन यत्र यदा यतः।
तत्परिप्राप्यतेऽवश्यं तेन तत्र तदा ततः॥]--सर्ग ११०, श्लोक ४०।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

जो कार्यरूप परिणत हो या उस कार्यरूप परिणतिमें उसकी सहायक हो। जो वस्तु कार्यरूप परिणत होती है उस वस्तुका कार्यके साथ अन्वय और व्यतिरेक पाया जाना निर्विवाद है, परन्तु जो वस्तु उस कार्यरूप परिणतिमें सहायक होती है उस वस्तुका भी उस कार्यके साथ अन्वय और व्यतिरेक पाया जाना आवश्यक है, जैसा कि परीक्षामुखसूत्र ग्रन्थके तृतीय समुद्देशके सूत्र ६३ की प्रमेयरत्नमाला-टीकामें कहा गया है—

"अन्वयव्यतिरेकसमधिगम्यो हि सर्वत्र कार्यकारणभावः। तौ च कार्यं प्रति कारणव्यापार-सव्यपेक्षावेवोपपद्येते कुलालस्येव कलशं प्रति।"

अर्थ—कार्यकारणभावकी सिद्धि अन्वय और व्यतिरेकपर आधारित है। तथा वे (अन्वय और व्यतिरेक) कार्यके प्रति कारणव्यापार सापेक्ष ही सिद्ध होते हैं, जिस प्रकार घटकार्यके प्रति कुम्भकारके अन्वय और व्यतिरेक सिद्ध होते हैं।

अतएव कहा जा सकता है कि अन्वय और व्यतिरेकके आधारपर जैसा कार्यकारणभाव स्वप्रत्ययकार्य और उपादानमें व स्व-परप्रत्ययकार्य और उपादानकारण तथा निमित्तकारणमें निर्णीत होता है वैसा कार्य-कारणभाव उस कार्य और उक्त देश व कालमें निर्णीत नहीं होता, क्योंकि कार्योत्पत्तिमें जिस प्रकार उपादान-कारण कार्यरूप परिणत होनेके आधारपर व प्रेरक और उदासीन दोनों निमित्तकारण उपादानकी कार्यरूप परिणतिमें सहायक होनेके आधारपर कार्यकारी सिद्ध होते हैं उस प्रकार उस कार्योत्पत्तिमें उक्त देश और उक्त काल कार्यरूप परिणत होने या उसमें सहायक होने रूपसे कार्यकारी सिद्ध नहीं होते। तात्पर्य यह है कि देश, कार्य और कारणभूत वस्तुओंका अवगाहक मात्र होता है व कालके आधारसे कार्य और कारणभूत वस्तुओंकी वृत्ति (मौजूदगी) मात्र सिद्ध होती है। तथा कालद्रव्यकी जो पर्यायें हैं वे उन द्रव्योंकी पर्यायोंका सीमानिर्धारण या विभाजन मात्र करती हैं। अतएव देश और कालकी कार्योत्पत्तिमें कुछ भी उपयोगिता नहीं है, केवल आवश्यकतानुसार उपादान कारण व प्रेरक और उदासीन निमित्तकारण ही कार्योत्पत्तिमें उपयोगी होते हैं।

आगममें जो यह बतलाया गया है कि क्षेत्रकी अपेक्षा भरत, ऐरावत और विदेह क्षेत्रोंके भव्य मानव ही मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं, हेमवत आदि क्षेत्रोंके भव्य मानव नहीं। इसी प्रकार कालकी अपेक्षा विदेह क्षेत्रके भव्य मानव मोक्ष-प्राप्तिके अनुकूल स्थिति विद्यमान रहनेके कारण सर्वदा मुक्त हो सकते हैं, तथा भरत और ऐरावत क्षेत्रोंके भव्य-मानव उत्सर्पिणी कालके तृतीय भागमें व अवसर्पिणी कालके चतुर्थ भागमें सामान्य रूपसे एवं अवसर्पिणी कालके तृतीय भागके अन्तिम हिस्सेमें व पंचम भागके प्रारम्भिक हिस्सेमें अपवाद रूपसे मुक्ति प्राप्त कर सकते हैं। उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी कालोंके शेष भागोंमें या उन भागोंके किसी अन्य हिस्सेमें कदापि मुक्ति प्राप्त नहीं कर सकते हैं। सो आगमके इस कथनसे यद्यपि देश और कालको भी मुक्तिरूप कार्यके प्रति उदासीनरूपसे निमित्तकारणता सिद्ध होती है, परन्तु इस कथनका यही आशय है कि जीव और पुद्गल द्रव्योंके यथायोग्य मध्यम उत्कर्षापकर्षमय देश और कालकी स्थिति ही जीवको मुक्ति प्राप्त करनेमें उदासीनरूपसे निमित्तकारण सिद्ध होती है। अमूर्त होनेके कारण देश और कालकी मुक्तिके प्रति कारणता सिद्ध नहीं होती, क्योंकि देश और कालका कार्य ऊपर स्पष्ट किया जा चुका है। यदि देश और काल भी जीवको मुक्ति प्राप्त करनेमें उदासीनरूपसे निमित्त-कारण होने लगें, तो ऐसी स्थितिमें कार्तिकेयानुप्रेक्षाकी गाथा—३२१-२२ व पद्मपुराण सर्ग—११० के श्लोक ४० में उनका कारणसामग्रीसे पृथक् निर्देश करना असंगत हो जायेगा।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उत्तरपक्ष स्वपरप्रत्ययपर्यायकी उत्पत्तिको क्रमबद्ध अर्थात् नियतक्रमसे सिद्ध करनेके लिए समयसार गाथा ३०८-११ की आत्मख्याति-टीकाके 'क्रमनियमित' शब्दका यह आशय ग्रहण करता है कि "क्रम अर्थात् क्रमसे (नम्बरवार) नियमित अर्थात् निश्चित। जिस समय जो पर्याय आनेवाली हो वही आयेगी, उसमें फेर-बदल नहीं हो सकता।" सो यह उसकी भ्रमबुद्धि है, क्योंकि उस टीकामें प्रयुक्त 'क्रमनियमित' शब्दका क्रममें नियमित अर्थात् बद्ध अर्थ ही ग्राह्य है, जिसका अभिप्राय है कि एकजातीय स्व-परप्रत्यय पर्यायें एकके पश्चात् एकरूप क्रमसे ही उत्पन्न होतीं हैं। एकजातीय दो आदि अनेक पर्यायें युगपत् (एकसाथ) एकसमयमें कदापि उत्पन्न नहीं होतीं। फलतः उक्त 'क्रमनियमित' शब्दका उत्तरपक्ष द्वारा स्वीकृत उपर्युक्त अर्थ युक्त न होकर पूर्वपक्ष द्वारा स्वीकृत क्रममें अर्थात् एकके पश्चात् एकरूप क्रममें नियमित अर्थात् बद्ध अर्थ ही युक्त है।

यद्यपि त्रैकालिक स्व-परप्रत्यय पर्यायें केवलज्ञानमें एकसाथ एकसमयमें क्रमबद्ध ही प्रतिभासित होती हैं, परन्तु उसके आधारसे उन पर्यायोंकी उत्पत्तिको क्रमबद्ध स्वीकार करना युक्त नहीं है, क्योंकि उन त्रैकालिक पर्यायोंका केवलज्ञानमें युगपत् (एकसाथ) प्रत्येक समयमें क्रमबद्ध प्रतिभासित होना अन्य बात है और उनका उपादान और प्रेरक तथा उदासीन निमित्त कारणोंके बलसे यथासंभव क्रमबद्ध या अक्रमबद्ध रूपमें उत्पन्न होना अन्य बात है। अर्थात् केवलज्ञानी जीव क्रम अथवा अक्रमसे उत्पन्न हुई, उत्पन्न हो रही और आगे उत्पन्न होनेवाली पर्यायोंको क्रमबद्धरूपमें जानता है। फलतः स्व-परप्रत्यय पर्यायोंके विषयमें यदि उत्पत्तिकी अपेक्षा विचार किया जाये तो यही कहा जा सकता है कि उनकी उत्पत्ति प्रेरक और उदासीन निमित्तकारणसापेक्ष होनेसे क्रमबद्ध और अक्रमबद्ध उभयरूप सिद्ध होती है तथा ज्ञप्तिकी अपेक्षा विचार किया जाये तो कहा जा सकता है कि उनका प्रतिभासन केवलज्ञानमें युगपत् (एकसाथ) एक समयमें क्रमबद्ध ही होता है।

स्व-परप्रत्यय पर्यायोंके विषयमें उत्पत्ति और ज्ञप्तिका यह अन्तर उत्तरपक्षके प्रमुख प्रतिनिधि पंडित फूलचन्द्रजी सिद्धान्ताचार्यने जैन-तत्व-मीमांसा (प्रथम संस्करण) पृष्ठ—२९१ पर इस प्रकार प्रकट किया है—

"यद्यपि हम मानते हैं कि केवलज्ञानको सब द्रव्यों और उनकी सब पर्यायोंको जाननेवाला मानकर भी क्रमबद्ध पर्यायोंकी सिद्धि मात्र केवलज्ञानके आलम्बनसे न करके कार्य-कारणपरम्पराको ध्यानमें रखकर ही की जाना चाहिए।"

इस प्रकार कार्य-कारणभावके आधारपर होनेवाली स्व-परप्रत्यथ पर्यायोंकी उत्पत्तिको क्रमबद्ध और अक्रमबद्ध तथा केवलज्ञानमें होनेवाली उनकी ज्ञप्तिको मात्र क्रमबद्ध मान्य करनेमें पूर्वपक्षके समान उत्तरपक्षको भी कोई कठिनाई नहीं होनी चाहिए।

यहाँ यह विशेष ज्ञातव्य है कि केवलज्ञानमें ही नहीं, मतिज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्यायज्ञानमें भी अमुक कार्य अमुक कारणोंसे अमुक देशमें अमुक कालमें अमुकरूपसे उत्पन्न हुआ, उत्पन्न हो रहा है या उत्पन्न होगा ऐसा क्रमबद्ध प्रतिभासन यथायोग्य सीमामें होता है, परन्तु यह अवश्य ध्यातव्य है कि चाहे केवलज्ञान हो अथवा चाहे मतिज्ञान, अवधिज्ञान या मनःपर्ययज्ञान हो, ये सभी ज्ञान अपने द्वारा प्रतिभासित पदार्थोंका विश्लेषण करनेमें अक्षम ही हैं। स्पष्टीकरण निम्नप्रकार है——

नेत्रइन्द्रियसे उत्पन्न हुए चाक्षुष-मतिज्ञानसे घटका ज्ञान तो होता है परन्तु वह घट है ऐसा विश्लेषण

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

उस मतिज्ञानसे नहीं होता, तथा कर्णेन्द्रियसे उत्पन्न हुए श्रावण-मतिज्ञानसे घटशब्दका ज्ञान तो होता है, परन्तु घटशब्दका अर्थ घटरूप पदार्थ है, यह विश्लेषण उस मतिज्ञानसे नहीं होता। यही स्थिति अन्य इंद्रियों-से उत्पन्न होनेवाले मतिज्ञानकी एवं अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञानकी जान लेना चाहिए। इसमें हेतु यह है कि मति आदि उक्त चारों ज्ञानों द्वारा प्रतिभासित पदार्थोंका विश्लेषण वितर्कात्मक ज्ञान द्वारा ही हो सकता है। जबकि वे चारों ज्ञान वितर्कात्मक नहीं होते। यतः श्रुतज्ञान वितर्कात्मक होता है, अतः मति आदि उक्त ज्ञानों द्वारा प्रतिभासित पदार्थोंका विश्लेषण श्रुतज्ञान द्वारा ही हो सकता है। यतः मति-ज्ञानी, अवधिज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानी जीवोंमें श्रुतज्ञानका सद्भाव नियमसे रहता है, अतः मतिज्ञानी, अवधिज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानी जीव इन ज्ञानोंसे प्रतिभासित पदार्थोंका श्रुतज्ञानके आधारपर विश्लेषण भी करते हैं पर जो केवलज्ञानी जीव हैं उनमें केवलज्ञानके साथ यतः श्रुतज्ञानका सद्भाव नहीं रहता है, अतः केवलज्ञानी जीव द्वारा केवलज्ञानमे प्रतिभासित पदार्थोंका विश्लेषण किया जाना सम्भव नहीं है। इतना अवश्य है कि केवलज्ञानी तीर्थंकर जीवकी भव्य जीवोंके भाग्य और वचनयोगके बलसे जो निरक्षरी दिव्य-ध्वनि खिरती है उसके अर्थको गणधर अपनी अतिशयपूर्ण श्रुतज्ञानशक्तिके आधारपर ग्रहणकर उस आधारसे अक्षरात्मक श्रुतका निर्माण करते हैं, तथा इस अक्षरात्मक श्रुतका अध्ययन करके अन्य विशेष श्रुतज्ञान शक्तिके धारक महापुरुष भी ग्रन्थोंका निर्माण करते हैं।

वर्तमानमें भी तीर्थंकर महावीरने केवलज्ञान द्वारा विश्वके सभी पदार्थोंको और उनकी त्रैकालिक समस्त पर्यायोंको युगपत् एक समयमें जब क्रमबद्ध जान लिया तब भव्यजीवोंके भाग्य और वचनयोगके बलसे उनकी निरक्षरी दिव्यध्वनि खिरी जिसके अर्थको गौतमगणधरने अपनी अतिशयपूर्ण श्रुतशक्तिके बलसे ग्रहण किया और उन्होंने अक्षरात्मक श्रुतकी रचना की। उसी प्रकार अपनी श्रुतज्ञानशक्तिके बलसे उसका अध्ययन करके अन्य आचार्योंने भी ग्रन्थोंका निर्माण किया। इस तरह यह श्रुत-परम्परा आजतक चल रही है।

इस विवेचनसे यह निष्कर्ष निकलता है कि कार्य-कारणभावका विश्लेषण वितर्कात्मक श्रुतज्ञान द्वारा ही होता है। मतिज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञान द्वारा नहीं, क्योंकि इन ज्ञानोंमें वितर्का-त्मकताका अभाव है।

जीवमें मतिज्ञान और श्रुतज्ञान दोनोंका एक साथ सद्भाव रहता, है तथा किसी-किसी जीवमें मति-ज्ञान और श्रुतज्ञानके साथ अवधिज्ञानका या मनःपर्ययज्ञानका अथवा अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान दोनोंका सद्भाव भी आगम द्वारा स्वीकार किया गया है, किन्तु जीवमें जब केवलज्ञानका विकास हो जाता है तब उसमें पहलेसे यथायोग्यरूपमें विद्यमान मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानका अभाव हो जाता हैं, क्योंकि आगमें क्षायिक केवलज्ञानका जो स्वरूप निर्धारित किया गया है उससे ज्ञात होता है कि क्षायिक केवलज्ञानके साथ जीवमें मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानका सद्भाव सम्भव नहीं है, क्योंकि वे क्षायोपशमिक हैं। तथा केवलज्ञानका विकास जीवमें समस्त ज्ञानावरणकर्मका क्षय होनेपर ही होता है, केवलज्ञानावरणकर्मका क्षय होनेपर नहीं होता।

इसप्रकार मतिज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानके साथ श्रुतज्ञानका सद्भाव होनेसे मतिज्ञानी, अवधिज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानी जीव तो श्रुतज्ञानके बलसे कार्य-कारणभावका विश्लेषण करते हैं, परन्तु केवलज्ञानके साथ श्रुतज्ञानका अभाव निश्चित हो जानेसे केवलज्ञानी जीव कार्यकारणभावका विश्लेषण नहीं

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

करते हैं। एक बात और है कि मतिज्ञानी, अवधिज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानी जीव यतः कृतकृत्य नहीं होते, अतः उन्हें तो कार्योत्पत्तिके लिए कार्य-कारणभावका विश्लेषण करना अनिवार्य है, परन्तु केवलज्ञानी जीव यतः कृतकृत्य होते हैं, अतः उन्हें कार्योत्पत्तिके अनावश्यक हो जानेसे उसमें हेतुभूत कार्य-कारणभावका विश्लेषण करना आवश्यक नहीं है।

पूर्वमें बतलाया जा चुका है कि विश्वमें एक आकाश, एक धर्म, एक अधर्म, असंख्यात काल, अनन्त-जीव और अनन्त पुद्गलरूप जितने पदार्थ विद्यमान हैं उन सबमें प्रतिसमय स्वप्रत्यय और स्व-परप्रत्ययके भेदसे दोनों प्रकारके परिणमन होते रहते हैं व उनमेंसे जो स्व-परप्रत्यय परिणमन हैं वे प्रेरक और उदासीन निमित्तोंके सहयोगपूर्वक ही होते हैं। एवं उन परिणमनोंकी उत्पत्तिके लिए पदार्थोंको प्रेरक और उदासीन निमित्तोंका सहयोग प्रायः निसर्गतः ही प्राप्त रहता है। परन्तु किन्हीं-किन्हीं पदार्थोंको उन प्रेरक और उदासीन निमित्तोंका सहयोग आवश्यकतानुसार जीवोंके प्रयत्नपूर्वक भी होता है। जैसे रेलगाड़ीको उसकी चलनक्रियामें प्रेरक निमित्तभूत इंजनका और उदासीन निमित्तभूत रेलपटरीका जो सहयोग प्राप्त होता है वह जीवोंके प्रयत्नपूर्वक ही होता है।

यद्यपि कार्तिकेयानुपेक्षाकी गाथा–३२१-२२, पद्मपुराण सर्ग–११० के श्लोक–४० और अन्य आगम-वचनोंसे भी यह ज्ञात होता है कि पदार्थोंमें जो परिणमन होते हैं वे केवलज्ञानी जीवके केवलज्ञानमें जैसे प्रतिभासित होते हैं वैसे ही होते हैं, परन्तु इस कथनका यह आशय नहीं ग्रहण करना चाहिए कि उन परिण-मनोंकी उत्पत्तिमें केवलज्ञानी जीवके केवलज्ञानमें होनेवाला वह प्रतिभासन कारण होता है, क्योंकि केवलज्ञानी जीव कार्य-कारणभावके आधारपर उत्पन्न हुई, उत्पन्न हो रही और आगे उत्पन्न होने वाली पर्यायोंको ही जानते हैं। अतएव केवलज्ञानी जीवके केवलज्ञानमें होनेवाले प्रतिभासनके अनुसार उन पर्यायोंकी उत्पत्ति स्वीकार करना गलत है। फलतः प्रकृत विषयमें दोनों पक्षोंके मध्य जो मतभेद है वह इस बातका हैं कि जहाँ उत्तरपक्ष पदार्थोंके सभी परिणमनोंकी उत्पत्तिमें केवलज्ञानी जीवके केवलज्ञानकी विषयताके आधारपर क्रम-बद्धता अर्थात् नियतक्रमता स्वीकार करता है वहाँ पूर्वपक्ष उन परिणकनोंकी उत्पत्तिमें श्रुतज्ञानसे ज्ञात कार्य-कारणभावके आधारपर यथासम्भव क्रमबद्धता अर्थात् नियतक्रमता और अक्रमबद्धता अर्थात् अनियतक्रमता दोनों ही बातोंको स्वीकार करता है। अर्थात् पूर्वपक्षकी मान्यता है कि स्वप्रत्यय परिणमन तो प्रेरक और उदासीन निमित्तोंके सहयोगके बिना उपादानकारणजन्य होनेसे क्रमबद्ध ही होते हैं तथा स्व-परप्रत्यय परिणमन प्रेरक और उदासीन निमित्तोंके सहयोगपूर्वक उपादानकारणजन्य होनेसे प्रेरक और उदासीन निमित्तोंकी प्राप्तिके अनुसार क्रमबद्ध और अक्रमबद्ध उभयरूप होते हैं। पदार्थोंके परिणमनोंकी उत्पत्तिके विषयमें दोनों पक्षोंकी परस्परविरोधी इन मान्यताओंमेंसे कौन मान्यता युक्त और कौन मान्यता अयुक्त है, इसका निर्णय किया जाता है—

१. यद्यपि कार्तिकेयानुप्रेक्षाकी गाथा–३२१-२२, पद्मपुराण सर्ग–११० के श्लोक–४० एवं अन्य आगमवचनोंके आधारपर पूर्वपक्ष और उत्तरपक्ष दोनों ही पदार्थोंके परिणमनोंके विषयमें यह स्वीकार करते हैं कि वे परिणमन जैसे केवलज्ञानी जीवके केवलज्ञानमें प्रतिभासित होते हैं वैसे ही होते हैं। पर ध्यान रहे कि केवलज्ञानी जीवके केवलज्ञानमें होनेवाला पदार्थोंके स्वप्रत्यय और स्व-परप्रत्यय परिणमनोंका वह प्रति-भासन उनकी उत्पत्तिका नियामक नहीं होता है, क्योंकि वास्तविकता यह है कि पदार्थोंके स्वप्रत्यय और स्व-परप्रत्यय परिणमन स्वकीय कार्य-कारणभावके आधारपर जिस रूपमें उत्पन्न हुए, उत्पन्न हो रहे हैं और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

आगे उत्पन्न होंगे उस रूपमें ही वे केवलज्ञानी जीवके केवलज्ञानमें प्रतिभासित होते हैं। इससे निर्णीत होता है कि उन परिणमनोंकी उत्पत्तिका नियामक श्रुतज्ञानपर आधारित कार्य-कारणभाव ही होता है, केवलज्ञानमें होनेवाला उनका प्रतिभासन नहीं। फलतः कार्तिकेयानुप्रेक्षाकी गाथा—३२१-२२ के "जिस पदार्थका जिस देशमें और जिस कालमें जिस विधानसे जैसा परिणमन जिनेन्द्र भगवानने ज्ञात किया है उस पदार्थका उस देशमें और उस कालमें उस विधानसे वैसा ही परिणमन होता है।" इस कथनका व पद्मपुराण सर्ग—११० के श्लोक ४० के "जिस जीवके द्वारा जिस देशमें और जिस कालमें जिस कारणसे जैसा प्राप्तव्य है उस जीवका उस देशमें और उस कालमें उस कारणसे वैसा ही प्राप्त होता है" इस कथनका एवं भैया भगवतीदासके "जो जो देखी वीतरागने सो सो होसी वीरा रे" इस कथनका मात्र यही प्रयोजन ग्रहण करना उचित हैं कि जीव विवक्षित पदार्थके विवक्षित परिणमनकी सम्पन्नताके लिए तदनुकूल कारणोंको जुटानेका जो प्रयत्न (पुरुषार्थ) करता है उसकी सफलतामें वह अहंकार न करे व असफलतामें हताश होकर अकर्मण्य न हो जावे। इस प्रकार उत्तरपक्ष द्वारा पदार्थोंके परिणमनोंकी उत्पत्तिको केवलज्ञानी जीवके केवलज्ञानकी विषयताके आधारपर क्रमबद्ध मान्य किया जाना अयुक्त है व पूर्वपक्ष द्वारा पदार्थोंके परिणमनोंकी उत्पत्तिको पूर्वोक्त प्रकार कार्य-कारणभावके आधारपर क्रमबद्ध और अक्रमबद्ध मान्य किया जाना युक्त है। एक बात और है कि सभी पदार्थ जब अनादिसिद्ध हैं तो उनके परिणमन भी अनादिकालसे होते आये हैं, जबकि केवलज्ञानकी सादिता आगम-सिद्ध होनेसे दोनों ही पक्ष स्वीकार करते हैं। फलतः पदार्थोंके परिणमनोंकी उत्पत्तिमें उन परिणमनोंका केवलज्ञानमें प्रतिभासित होना कार्यकारी सिद्ध नहीं होता। इस बातको तृतीय दौरकी समीक्षामें विस्तारसे स्पष्ट किया जायगा।

२. पूर्वमें स्पष्ट किया जा चुका है कि कार्योत्पत्तिके लिए कार्य-कारणभावका विश्लेषण श्रुतज्ञान द्वारा ही हो सकता है, केवलज्ञान द्वारा नहीं, अतः केवलज्ञानी जीव एक तो श्रुतज्ञानके अभावमें कार्य-कारण-भावका विश्लेषण कर नहीं सकता है, दूसरे उसके कृतकृत्य हो जानेसे कार्योत्पत्तिके अनावश्यक हो जानेके कारण उसे कार्य-कारणभावका विश्लेषण करना आवश्यक नहीं है। यतः मतिज्ञानी, अवधिज्ञानी और मनः-पर्ययज्ञानी जीव एक तो श्रुतज्ञानके सद्भावमें कार्यकारणभावका विश्लेषण करते हैं, दूसरे कृतकृत्य न होनेसे उन्हें कार्योत्पत्तिके लिए कार्य-कारणभावका विश्लेषण करना अनिवार्य भी है। अतएव मतिज्ञानी, अवधिज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानी जीव विवक्षित कार्यकी उत्पत्तिके लिए श्रुतज्ञान द्वारा कार्य-कारणभावका विश्लेषण करके ही कारणोंके जुटानेका प्रयत्न करते हैं। इसके अलावा यहाँ यह भी ध्यातव्य है कि मतिज्ञानी, अवधिज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानी जीवोंको कार्योत्पत्तिके लिए प्रयत्न करनेके अवसरपर जिस प्रकार कार्य-कारणभावपर दृष्टि रखना आवश्यक है उस प्रकार केवलज्ञानी जीवके केवलज्ञानकी विषयतापर दृष्टि रखना आवश्यक नहीं है। इससे सिद्ध होता है कि उत्तरपक्षद्वारा पदार्थोंके परिणमनोंकी उत्पत्तिको केवलज्ञानी जीवकी केवलज्ञानकी विषयतापर आधारित क्रमबद्ध मान्य किया जाना अयुक्त है व पूर्वपक्ष द्वारा पदार्थोंके परिणमनोंकी उत्पत्तिको कार्य-कारणभावके आधारपर क्रमबद्ध और अक्रमबद्ध मान्य किया जाना युक्त है।

यहाँ इतना विशेष ज्ञातव्य है कि जीव द्वारा कार्योत्पत्तिके लिए श्रुतज्ञानके बलसे किया गया कार्य-कारणभावका निर्णय यथायोग्य सम्यक् और मिथ्या दोनों प्रकारका हो सकता है, अतः वह निर्णय यदि सम्यक् हो तो उसके आधारसे कार्योत्पत्तिके लिए किया गया जीवका प्रयत्न सफल होता है और यदि मिथ्या हो तो उसके आधारके कार्योत्पत्तिके लिए किया गया जीवका प्रयत्न असफल होता है। इसके अतिरिक्त जीव यदि

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

विवेकी है तो अपने प्रयत्नके सफल हो जानेपर वह अहंकार नहीं करता है और असफल हो जानेपर हताश होकर अकर्मण्य भी नहीं होता है। परन्तु जीव यदि अविवेकी है तो वह अपने प्रयत्नके सफल होनेपर अहंकार करने लगता है व असफल होनेपर हताश होकर अकर्मण्य भी हो जाता है।

३. मतिज्ञानी, अवधिज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानी जीवोंको कार्योत्पत्तिके अवसरपर एक तो उसके विषयमें केवलज्ञानी जीवके केवलज्ञानमें क्या प्रतिभासित हो रहा है ? इसकी जानकारी (ज्ञान) होनेका कोई नियम नहीं है। वे तो मात्र "जो जो देखी वीतारगने सो सो होसी बीरा रे" यह विकल्प ही कर सकते हैं। दूसरे, कार्योत्पत्तिके अवसर-पर कदाचित् किसी जीवको कार्योत्पत्तिके विषयमें केवलज्ञानी जीवके केवलज्ञानमें जो प्रतिभासित हो रहा है उसका ज्ञान हो भी जावे, परन्तु वह जीव यदि अविवेकी है तो उस अविवेकके आधारपर वह अपना प्रयत्न विपरीत करनेको भी उद्यत हो सकता है। जैसे मारीचको तीर्थंकर ऋषभदेवकी दिव्यध्वनिके श्रवणसे जब यह ज्ञात हुआ कि वह भी तीर्थंकर होगा, तो 'नान्यथावादिनो जिनाः' ऐसा अटल विश्वास करके वह कुमार्गगामी बनकर नानाप्रकारकी कुत्सित योनियोंमें बहुत काल तक भ्रमण करता रहा और जब वह सुबोधके आधारपर कुमार्गको त्यागकर सन्मार्गका पथिक बना तभी वह महावीरके रूपमें अन्तिम तीर्थंकर बन सका। इस विषयमें उत्तरपक्षका "मारीचको अन्तिम तीर्थंकर महावीर बनना था, इसलिए वह कुमार्गगामी बना।" यह कथन तर्कपूर्ण नहीं माना जा सकता है, क्योंकि वह सन्मार्गपर चलकर उत्तम योनियोंमें भ्रमण करके भी अंतिम तीर्थंकर भगवान महावीर बन सकता था। इससे निर्णीत होता है कि उत्तरपक्ष द्वारा पदार्थोंके परिणमनोंकी उत्पत्तिको केवलज्ञानी जीवके केवलज्ञानकी विषयताके आधारपर मात्र क्रमबद्ध मान्य किया जाना युक्त नहीं हैं अपितु पूर्वपक्ष द्वारा उन परिणमनोंकी उत्पत्तिको कार्य-कारणभावके आधारपर क्रमबद्ध और अक्रमबद्ध मान्य किया जाना युक्त है।

४. श्रीकानजी स्वामीने तो भैया भगवतीदासजीके 'जो-जो देखी वीतरागने सो-सो होसी वीरा रे' इस वचनपर आधारित पर्यायोंकी उत्पत्तिकी क्रमबद्धतामें अटूट विश्वास रखकर यहाँ तक मान लिया कि कार्योत्पत्तिके लिये किया जानेवाला जीवोंका प्रयत्न (पुरुषार्थ) भी उसी क्रमबद्धताका अंग है। इसका परिणाम यह हुआ कि जब उन्हें शारीरिक व्याधि हुई, तो वे अपनेको महान् अध्यात्ममार्गी व अध्यात्मके अभूतपूर्व उपदेष्टा मानते हुए भी राजसी वैभवमें लिप्त रहनेके कारण उस व्याधिको सहन नहीं कर सके और भैया भगवतीदासजीके उक्त वचनके आधारपर पुरुषार्थहीन होकर वे न केवल इस मार्गको भूल गये, अपितु भक्तोंकी प्रार्थना और डाक्टरोंके सुझावोंकी उपेक्षा करके उस व्याधिसे छुटकारा पानेके लिए बम्बई जाकर जसलोक अस्पतालमें प्रविष्ट हुए एवं वहीं कालकवलित हो गये। इससे भी निर्णीत होता है कि उत्तरपक्ष द्वारा पदार्थोंके परिणमनोंकी उत्पत्तिको केवलज्ञानी जीवोंकी केवलज्ञानविषयताके आधारपर मात्र क्रमबद्ध मान्य किया जाना अयुक्त है, किन्तु पूर्वपक्ष द्वारा उन परिणमनोंकी उत्पत्तिको कार्य-कारणभावके आधरपर क्रमबद्ध और अक्रमबद्ध मान्य किया जाना युक्त है।

५. माना कि तीर्थंकर नेमिनाथकी दिव्यध्वनिके श्रवणसे श्रोताओंको ज्ञात हुआ कि बारह वर्ष व्यतीत होनेपर द्वारिकापुरी भस्म हो जायेगी और उसे भस्म न होने देनेके लिए लोगों द्वारा लाख प्रयत्न करनेपर भी वह भस्म हो गयी, परन्तु इसमें ज्ञातव्य यह है कि द्वारिकापुरी तदनुरूप कारणोंके मिलनेपर ही भस्म हुई वह तीर्थंकर नेमिनाथके केवलज्ञानमें होनेवाले प्रतिभासनके बलपर अथवा भगवान नेमिनाथकी दिव्यध्वनिके बलपर नहीं भस्म हुई। इसी प्रकार केवलज्ञानी जीवोंके समान मतिज्ञानी, अवधिज्ञानी और

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

मनःपर्ययज्ञानी जीवोंकी भविष्यवाणियाँ भी यथायोग्य सत्य हो सकती हैं या होती हैं, परन्तु वहाँ भी कार्य तो श्रुतज्ञानके बलपर निर्णीत कार्य-कारणभावके आधारपर ही सम्पन्न होते हैं। मतिज्ञानी, अवधिज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानी जीवोंके यथायोग्य मतिज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानके बलपर अथवा उनकी भविष्य-वाणियोंके बलपर नहीं। इस विवेचनसे भी निर्णीत होता है कि उत्तरपक्ष द्वारा पदार्थोंके परिणमनोंकी उत्पत्ति-को केवलज्ञानी जीवकी केवलज्ञानविषयताके आधारपर मात्र क्रमबद्ध मान्य किया जाना अयुक्त है व पूर्वपक्ष द्वारा उन परिणामोंकी उत्पत्तिको कार्य-कारणभावके आधारपर क्रमबद्ध और अक्रमबद्ध मान्य किया जाना युक्त है।

६. उत्तरपक्षकी मान्यता है कि भवितव्यता (भविष्यमें होनेवाली कार्योत्पत्ति) के अनुसार ही जीवकी बुद्धि हो जाती है। उसका पुरुषार्थ भी उसी भवितव्यताके अनुसार होता है और अन्य सहायक कारण भी उसी भवितव्यताके आधारपर प्राप्त होते हैं—

"तादृशी जायते बुद्धिर्व्यवसायश्च तादृशः।
सहायस्तादृशाः सन्ति यादृशी भवितव्यता॥"

सो उसकी यह मान्यता भी मिथ्या है क्योंकि वह पक्ष भवितव्यताके अनुसार होनेवाली कार्योत्पत्तिमें कारणभूत बुद्धि, व्यवसाय (पुरुषार्थ) और अन्य सहायक कारणोंकी प्राप्ति भी उसी भवितव्यताके अनुसार मानता है। फलतः ऐसी अवस्थामें उक्त बुद्धि, पुरुषार्थ और सहायक कारणोंके बिना भी कार्योत्पत्तिके होनेका प्रसंग उपस्थित होता है। इसपर यदि उत्तरपक्ष यह कहे कि वह प्रसंग उसको इष्ट है, तो उसका ऐसा कहना आप्तमीमांसाकी कारिका[१] ८८, ८९, ९० और ९१ के कथनके विरुद्ध है। इस बातको दार्शनिक विद्वान् अच्छी तरह समझ सकते हैं।

तात्पर्य यह है कि आप्तमीमांसाकी उक्त कारिकाओंके अनुसार भवितव्यता (भविष्यमें होनेवाली) कार्योत्पत्ति), जिसे वर्तमानमें कार्योत्पत्तिकी योग्यता, अदृष्ट या दैव कहा जाता है—के अतिरिक्त अन्य कोई वस्तु नहीं है। तथा इससे होनेवाली कार्योत्पत्ति (उसकी कार्यरूप परिणति) जीवकी बुद्धि (श्रुतज्ञान और व्यवसाय (पुरुषार्थ) तथा अन्य सहायक कारणोंका सहयोग प्राप्त होनेपर ही होती है, अतः भवितव्यताको उक्त बुद्धि, व्यवसाय और अन्य सहायक कारणोंकी प्राप्तिमें कारण नहीं माना जा सकता है। फलतः उक्त कारिकाओंके आधारपर यही निर्णीत होता है कि पदार्थमें विवक्षित भवितव्यता (कार्यरूप परिणत होनेकी योग्यता) हो उसे बुद्धि, पुरुषार्थ तथा अन्य साधनसामग्रीका योग प्राप्त हो जावे, तो ही विवक्षित कार्यकी उत्पत्ति होती है। तथा पदार्थमें विवक्षित भवितव्यता विद्यमान रहनेपर भी यदि बुद्धि, व्यवसाय और अन्य

१. दैवादेवार्थसिद्धिश्चेद्दैवं पौरुषतः कथम्।
दैवतश्चेदविर्मोक्षः पौरुषं निष्फलं भवेत्॥८८॥
पौरुषादेवार्थसिद्धिश्चेत् पौरुषं दैवतः कथम्।
पौरुषाच्चेदमोघं स्यात् सर्वप्राणिषु पौरुषम्॥८९॥
विरोधान्नोभयैकात्म्यं स्याद्वादन्यायविद्विषाम्।
अवाच्यतैकान्तेऽप्युक्तिर्नावाच्यमिति युज्यते॥९०॥
अबुद्धिपूर्वापेक्षायामिष्टानिष्टं स्वदैवतः।
बुद्धिपूर्वव्यपेक्षायामिष्टानिष्टं स्वपौरुषात्॥९१॥

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

साधनसामग्रीका योग न प्राप्त हो तो विवक्षित कार्यकी उत्पत्ति नहीं होती है। यदि उत्तरपक्ष यह कहे कि भवितव्यताके अनुसार जो कार्यकी उत्पत्ति होती है वह बुद्धि, व्यवसाय और अन्य सहायकसामग्रीकी अपेक्षाके बिना ही होती है, तो उसकी यह स्वीकृति एक तो आप्तमीमांसाकी उपर्युक्त कारिकाओंके विरुद्ध है और दूसरे वह अयुक्त भी है, क्योंकि कार्योत्पत्तिके विषयमें कारणसामग्रीकी अपेक्षा कार्तिकेयानुप्रेक्षाकी गाथा ३२१-२२ में व पद्मपुराण सर्ग ११० के श्लोक ४० में भी स्वीकार की गयी है। संज्ञीपंचेन्द्रिय जीवोंके अनुभव, इन्द्रिय-प्रत्यक्ष और तर्कसे भी ऐसा ही निर्णीत होता है।

निष्पत्ति

१. समयसारके सर्वविशुद्धज्ञानाधिकारकी गाथा ३०८ से ३११ तककी आत्मख्याति-टीकाका जो कथन पूर्वमें उद्धृत किया गया है उसमें निर्दिष्ट "क्रमनियमित" शब्दका उत्तरपक्षने जो यह अर्थ समझा है कि "क्रम अर्थात् क्रमसे (नम्बरवार) तथा नियमित अर्थात् निश्चित। जिस समय जो पर्याय आनेवाली है वही आयेगी, उसमें फेर-फार नहीं हो सकता।" उसे मैं उसकी भ्रमबुद्धिका परिणाम मानता हूँ, क्योंकि प्रकरणको देखते हुए उस 'क्रमनियमित' शब्दका क्रम अर्थात् एकके पश्चात् एकरूप क्रममें नियमित अर्थात् निश्चित अर्थ ही संगत है। भाव यह है कि प्रत्येक पदार्थकी एकजातीय नाना पर्यायोंकी उत्पत्ति एकके पश्चात् एकरूप क्रमसे ही होती है, युगपत् अर्थात् एकसाथ एक ही समयमें नहीं होती। इस बातको पूर्वमें स्पष्ट किया जा चुका है।

२. केवलज्ञानी जीवके केवलज्ञानकी विषयताके अनुसार निर्णीत पर्यायोंकी क्रमबद्धताके आधारपर उन पर्यायोंकी उत्पत्तिको क्रमबद्ध मानना युक्त नहीं है, क्योंकि उन पर्यायोंकी उत्पत्ति श्रुतज्ञानके आधारपर निर्णीत कार्य-कारणभावके आधारपर यथायोग्य क्रमबद्ध और अक्रमबद्ध दोनों प्रकारसे होती है तथा श्रुतज्ञानके बलसे निर्णीत कार्य-कारणभावके आधारपर क्रमबद्ध और अक्रमबद्धरूपसे उत्पन्न हुई, उत्पन्न हो रहीं और आगे उत्पन्न होनेवाली पर्यायें केवलज्ञानी जीवके केवलज्ञानमें क्रमबद्ध ही प्रतिभासित होती हैं। इस विषयको भी पूर्वमें स्पष्ट किया जा चुका है।

३. कार्तिकेयानुप्रेक्षाकी गाथा ३२१-२२ व पद्मपुराण सर्ग ११० के श्लोक ४० तथा अन्य आगम-वाक्योंमें पर्यायोंकी जिस क्रमबद्धताका विवेचन किया गया है उसका उपयोग पर्यायोंकी उत्पत्तिके विषयमें नहीं करना चाहिए, क्योंकि उनका उपयोग कार्योत्पत्तिके लिए प्रयत्नशील जीवोंको अपने प्रयत्नमें सफल होनेपर अहंकार न करने व असफल होनेपर हताश होकर अकर्मण्य न बननेके लिए करना ही उचित है। यदि कोई व्यक्ति उसका उसके अतिरिक्त अन्य उपयोग करना चाहता है तो उसका मारीच व कांजीस्वामीके समान अकल्याण होना संभव है। इस विवेचनको भी पूर्वमें स्पष्ट किया जा चुका है।

इस प्रकार प्रकृत विषयके संबधमें अबतक जो विवेचन किया गया है उससे निर्णीत होता है कि पदार्थोंकी श्रुतज्ञानके बलसे निर्णीत कार्य-कारणभावके आधारपर यथायोग्य क्रमबद्ध और अक्रमबद्धरूपसे निष्पन्न हुई, निष्पन्न हो रहीं और आगे निष्पन्न होने वाली स्वप्रत्यय और स्व-परप्रत्यय पर्यायोंकी केवल-ज्ञानी जीवके केवलज्ञान द्वारा होने वाली ज्ञप्तिको ही क्रमबद्ध स्वीकार करना उचित है। उनकी उत्पत्तिको तो श्रुतज्ञानके बलसे निर्णीत कार्य-कारणभावके आधारपर यथायोग्य क्रमबद्ध और अक्रमबद्ध मान्य करना ही युक्त और कल्याणकारी है।

मुझे इस बातका आश्चर्य है कि श्री कानजीस्वामीने अनुभव, इन्द्रियप्रत्यक्ष और तर्कसे विरुद्ध आगम-के अभिप्रायको ग्रहणकर केवलज्ञानी जीवके केवलज्ञानकी विषयताके आधारपर निर्णीत पर्यायोंकी क्रमबद्धताका

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

श्रुतज्ञानके बलपर निर्णीत कार्य-कारणभावपर आधारित पर्यायोंकी उत्पत्तिमें उपयोग किया है। मुझे इस बातका भी आश्चर्य है कि सोनगढ़सिद्धान्तवादी वर्ग भी उनके उपदेशसे प्रभावित होकर उनकी अनुभव, इन्द्रिय-प्रत्यक्ष और तर्कके विरुद्ध मान्यताका अनुसरण कर रहा है। मुझे इस बातका भी आश्चर्य है कि पं० फूलचन्द्रजी सिद्धान्ताचार्य, वाराणसी और डॉ० हुकुमचंद्र भारिल्ल जयपुरने उक्त मान्यताको पुष्ट किया है। मुझे इस बातका भी आश्चर्य है कि डॉ हुकमचन्द्र भारिल्लकी 'क्रमबद्ध पर्याय' पुस्तकमें निर्दिष्ट आचार्यों मुनिराजों, व्रतियों, विद्वानों और लोकप्रिय पत्र-पत्रिकाओंने आगमके अभिप्रायको समझनेकी चेष्टा न करके उनकी मान्यताका समर्थन किया है और मुझे इस बातका भी आश्चर्य है कि कतिपय अन्य साधु, व्रती, विद्वान् और सामान्य जन भी कार्योत्पत्तिके विषयमें उनकी (कानजीस्वामीको) उस मान्यताको स्वीकार करनेके लिए उत्सुक हैं। ऐसी विचित्र दशा देखते हुए मेरी दृष्टि आगमके उस वचनपर जाती है जिसमें यह बतलाया गया है कि सिद्धान्तग्रन्थोंका पठन-पाठन गृहस्थोंके लिए उचित नहीं है। वर्तमानमें तो आगमका वह वचन कतिपय साधु-संतोंपर भी लागू होता है। वास्तवमें सिद्धान्तका अनर्थ और दुरुपयोग रोकनेसे लिए ही आचार्योंने बड़ी सूझ-बूझसे सिद्धान्तग्रन्थोंके अध्ययनका सर्वसाधारणके लिए निषेध किया है।

मुझे आशा है कि सोनगढ़सिद्धान्तवादी सभी जन मेरे इस विवेचनपर गम्भीरतापूर्वक विचार करके तथ्यका निर्णय करेंगे। तथा आगमके अभिप्रायको समझनेमें लापरवाह एवं संशयमें पड़े हुए पुरातन सिद्धान्तवादी सभीजन भी उत्पत्तिकी अपेक्षा आगम द्वारा स्वीकृत व अनुभव, इन्द्रियप्रत्यक्ष और तर्कसे सिद्ध स्वप्रत्यय पर्यायोंकी उत्पत्तिको क्रमबद्ध और स्व-परप्रत्यय पर्यायोंकी उत्पत्तिको निमित्तोंके समागमके अनुसार क्रमबद्ध और अक्रमबद्ध ही मान्य करेंगे।

केवलज्ञानकी विषयमर्यादा

समयसार गाथा १०३ में बतलाया गया है कि एक द्रव्य दूसरे द्रव्यके साथ संयुक्त या बद्ध होनेपर भी वे दोनों द्रव्य कभी तन्मयरूपसे एकरूताको प्राप्त नहीं होते। और न एक-दूसरे द्रव्यके गुण-धर्म ही एक-दूसरे द्रव्यमें संक्रमित होते हैं—

जो जम्हि गुणे दव्वे सो अण्णम्हि ण संकमदि दव्वे।

पंचास्तिकायकी गाथा ७ में भी बतलाया गया है कि सभी द्रव्य परस्परमें प्रविष्ट होते हुए भी, परस्परको अवगाहित करते हुए भी और परस्पर (दूध और जलकी तरह) मिलकर रहते हुए भी कभी अपने स्वभावको नहीं छोड़ते हैं—

अण्णोण्णं पविसंता दिता ओगासमण्णमण्णस्स।
मेलंता वि य णिच्चं सगं सहावं ण विजहंति॥

तात्पर्य यह है कि विश्वमें एक आकाश, एक धर्म, एक अधर्म, असंख्यात् काल, अनन्त जीव और अनन्त पुद्गलरूप जितने पदार्थ हैं वे सभी यथायोग्य परस्पर संयुक्त होकर ही रह रहे हैं तथा जोव और पुद्गल एवं पुद्गल और पुद्गल परस्पर बद्ध होकर भी रह रहे हैं। तथापि सभी द्रव्य अपने-अपने द्रव्यरूप, गुणरूप और पर्यायरूप स्वभावमें रह रहे हैं और रहते जावेंगे। कोई भी पदार्थ संयुक्त या बद्ध दशामें दूसरे पदार्थकी द्रव्यरूपता, गुणरूपता और पर्यायरूपताको प्राप्त नहीं होता, न हो सकता है। इतना अवश्य है कि सभी पदार्थ यथायोग्य उस संयुक्त या बद्ध दशामें परस्परके सहयोगसे अपना स्व-परप्रत्यय परिणमन करते

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रहते हैं। जीव और पुद्गल तथा पुद्गल और पुद्गल तो उस बद्ध दशामें परस्परके सहयोगसे अपना-अपना स्व-परप्रत्यय परिणमन विकृत भी करते रहते हैं। समयसार गाथा ८० में कहा भी है कि जीवके परिणामोंके निमित्त (सहयोग) से पुद्गल कर्मरूप परिणत होते हैं और पुद्गलकर्मके निमित्त (सहयोग) से जीव भी तथैव (रागादिभावकर्मरूप) परिणत होता हैं—

जीवपरिणामहेदुं कम्मत्तं पुग्गला परिणमंति।
पुग्गलकम्मणिमित्तं तहेव जीवो वि परिणमई॥

समयसार गाथा ८१ में यह भी कहा गया है कि बद्ध दशामें जीव पुद्गलकर्मगुणरूप परिणत नहीं होता और पुद्गलकर्म जीवगुणरूप परिणत नहीं होता। परस्परके निमित्तसे (सहयोगसे) दोनोंका अपना-अपना परिणमन अवश्य होता है—

ण वि कुव्वइ कम्मगुणे जीवो कम्मं तहेव जीवगुणे।
अण्णोण्णणिमित्तेण दु परिणामं जाण दोहणंपि॥

यह वस्तुस्थिति है। इससे यह सिद्ध होता है कि यद्यपि उपर्युक्त सभी पदार्थ परस्पर संयुक्त होकर रह रहे हैं व जीव और पुद्गल तथा पुद्गल और पुद्गल अनादिकालसे परस्पर बद्ध होकर भी रहते आये हैं, तथापि वे पदार्थ यथायोग्य उस संयुक्त दशामें या बद्ध दशामें भी सतत अपनी-अपनी द्रव्यरूपता, गुणरूपता और स्वप्रत्यय व स्व-परप्रत्यय पर्यायरूपतामें ही विद्यमान हैं। जैसे संयुक्त दशामें आकाशकी अपनी द्रव्य-रूपता नियत अनन्तप्रदेशात्मक हो है। धर्मकी, अधर्मकी और सभी जीवोंमेंसे प्रत्येक जीवकी अपनी-अपनी द्रव्यरूपता नियत असंख्यातप्रदेशात्मक ही है। तथा समस्त कालोंमेंसे प्रत्येक कालकी व समस्त पुद्गलोंमेंसे प्रत्येक पुद्गलकी अपनी-अपनी द्रव्यरूपता एकप्रदेशात्मक ही है। ऐसी ही स्थिति संयुक्त दशामें उन पदार्थोकी अपनी-अपनी गुणरूपता और स्वप्रत्यय एवं स्व-परप्रत्ययपर्यायरूपताकी भी नियत है तथा बद्धदशामें जीव और पुद्गलकी व पुद्गल और पुद्गलकी अपनी-अपनी द्रव्यरूपता, गुणरूपता, व स्वप्रत्यय और स्व-परप्रत्यय पर्याय-रूपताकी भी ऐसी ही स्थिति नियत है। यही कारण है कि पुरुषार्थसिद्धयुपाय (पद्य एक) में बतलाया गया है कि सभी पदार्थ केवलज्ञानमें दर्पणतलके समान अपनी-अपनी द्रव्यरूपता, गुणरूपता, और स्वप्रत्यय व स्व-परप्रत्ययपर्यायरूपतासहित प्रतिसमय युगपत् पृथक्-पृथक् ही प्रतिफलित हो रहे हैं—

तज्जयति परं ज्योतिः समं समस्तैरनन्तपर्यायैः।
दर्पणतल इव सकला प्रतिफलति पदार्थमालिक यत्र॥

जो बात इस पद्यमें बतलाई गई है वही बात तत्त्वार्थसूत्रके 'सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य' (१-२९) सूत्रमें भी बतलाई गई है।

यह विवेचन हमें इस निष्कर्षपर पहुँचा देता है कि उक्त सभी पदार्थ परस्पर संयुक्त रहते हुए भी जीव और पुद्गल तथा पुद्गल और पुद्गल परस्पर बद्ध रहते हुए भी जब केवलज्ञानमें सतत् अपनी-अपनी द्रव्य-रूपता, गुणरूपता और स्वप्रत्यय व स्व-परप्रत्यय पर्यायरूपतासहित पृथक्-पृथक् ही प्रतिभासित हो रहे हैं तो उस स्थितिमें उन पदार्थोंकी संयुक्त दशाका व जीव और पुद्गल एवं पुद्गल और पुद्गलकी बद्धदशाका प्रतिभासन केवलज्ञानमें नहीं हो सकता है।

तात्पर्य यह है कि समयसार, गाथा १०३, पंचास्तिकाय, गाथा ७ और समयसार, गाथा ८१ के अनु-सार उक्त पदार्थोंका परस्पर पृथक्कपना वास्तविक सिद्ध होता है व उनकी यथायोग्य संयुक्त व बद्ध दशा

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

अवास्तविक सिद्ध होती है। इसलिए केवलज्ञानमें जब प्रतिक्षण पदार्थोंकी वास्तविक पृथक्-पृथक्रूपताका प्रतिभासन हो रहा है तो उसमें उनकी अवास्तविक यथायोग्य परस्पर संयुक्त दशाका या बद्ध दशाका प्रतिभासन होना संभव नहीं रह जाता है। मतिज्ञान, अवधिज्ञान, मनःपर्ययज्ञान और केवलज्ञानमेंसे मतिज्ञान ही ऐसा ज्ञान है जिसमें सीपकी वास्तविक सीपरूपताका और आस्तविक रजतरूपताका प्रतिभासन सम्भव है। परन्तु उस मतिज्ञानमें भी जब सीपकी वास्तविक सीपरूपताका प्रतिभासन हो रहा हो तब उसकी अवास्तविक रजरूपताका प्रतिभासन नहीं होता है और उसमें जब सीपकी अवास्तविक रजरूपताका प्रतिभासन हो रहा हो तब उसकी वास्तविक सीपरूपताका प्रतिभासन नहीं होता है।

यदि कहा जाये कि सीपकी रजतरूपता जैसी अवास्तविक है वैसी अवास्तविक पदार्थोंकी संयुक्त दशा या बद्ध दशा नहीं है, क्योंकि जिस प्रकार मतिज्ञानमें सोपकी अवास्तविक रजरूपताका प्रतिभासन मिथ्या माना जाता है उस प्रकार मतिज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानमें होनेवाले पदार्थोंकी संयुक्त दशा या बद्धदशाके प्रतिभासनको मिथ्या नहीं माना जाता है, इसलिए केवलज्ञानके विषयमें 'मतिज्ञानका उपर्युक्त उदाहरण अयुक्त है, तो इसका समाधान यह है कि मतिज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानमें प्रतिभासित होनेवाली पदार्थोंकी संयुक्तदशा या बद्धदशा नानापदार्थनिष्ठ होनेसे उपचरित धर्मके रूपमें उपचारसे ही वास्तविक है। एकपदार्थनिष्ठ स्वरूपदृष्टिसे तो वह मिथ्या ही है। अतएव प्रत्येक पदार्थके पृकक्-पृथक् स्वरूपका प्रतिभासन करनेवाले केवलज्ञानमें उसके प्रतिभासनका निषेध किया गया है, क्योंकि केवलज्ञानमें सतत प्रत्येक पदार्थके पृथक्-पृथक् तदात्मक स्वरूपका ही प्रतिभासन होता है। इस विवेचनसे यह भी सिद्ध होता है कि मतिज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानमें होनेवाला पदार्थका प्रतिभासन केवलज्ञानमें होनेवाले पदार्थके प्रतिभासनसे विलक्षण ही होता है। इस विलक्षणताका स्पष्टीकरण निम्नप्रकार है—

१—यतः जीवमें केवलज्ञान समस्तज्ञानावरणकर्मका सर्वथा क्षय हो जानेपर ही प्रकट होता है, अतः केवलज्ञानमें समस्त पदार्थोंकी एक-एक क्षणवर्ती स्थितिके प्रतिभासनकी क्षमता होनेसे उसमें सभी पदार्थोंकी एक-एक क्षणवर्ती स्थितिका पृथक्-पृथक् प्रतिभासन होता है। यतः जीवमें मतिज्ञान मतिज्ञानावरणकर्मका क्षयोपशम होनेपर प्रकट होता है, अवधिज्ञान अवधिज्ञानावरणकर्मका क्षयोपशम होनेपर प्रकट होता है और मनःपर्ययज्ञान मनःपर्ययज्ञानावरणकर्मका क्षयोपशम होनेपर प्रकट होता है, अतः तीनों ज्ञानोंमें अपने-अपने विषयभूत पदार्थकी अन्तर्मुहूर्तकालवर्ती नाना स्थितियोंका अखण्डरूपसे प्रतिभासन होनेकी क्षमता होनेसे उस पदार्थकी अन्तर्मुहूर्तकालवर्ती नाना स्थितियोंका ही अखण्डरूपसे प्रतिभासन होता है। तात्पर्य यह है कि जहाँ उक्त प्रकार क्षायिक होनेसे केवलज्ञानमें होनेवाला पदार्थका प्रतिभासन क्षण-क्षणमें परिवर्तनशील है वहाँ उक्त प्रकार क्षायोपशमिक होनेसे मतिज्ञान, अवधिज्ञान ओर मनःपर्यज्ञान इन तीनोंमें होनेवाला पदार्थका प्रतिभासन अन्तर्मुहूर्तकालमें ही परिवर्तनशील है। एक-एक क्षणमें परिवर्तनशील नहीं है।

२—यतः जीवमें केवलज्ञान समस्तज्ञानावरणकर्मके सर्वथा क्षय होनेपर प्रकट होता है, अतः उसमें समस्त पदार्थोंका प्रतिभासन मात्र स्व-सापेक्ष होनेसे असीम होता है। यह बात तत्त्वार्थसूत्रके "सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य" (१-२९) सूत्रसे जानी जाती है। इसके विपरीत जीवमें मतिज्ञान मतिज्ञानावरणकर्मका क्षयोपशम होनेपर प्रकट होता है अतः उसमें होनेवाला पदार्थका प्रतिभासन पौद्गलिक स्पर्शन, रसना, नासिका, नेत्र, कर्ण और मनके अवलम्बनपूर्वक होनेसे मर्यादित होता है। यह बात तत्त्वार्थसूत्रके "मतिश्रुतयोर्निबन्धो द्रव्येष्वसर्वपर्यायेषु" (१-२६) सूत्रसे जानी जाती है। तथा जीवमें अवधिज्ञान अवधिज्ञानावरणकर्मका क्षयोपशम होनेपर व मनःपर्ययज्ञान मनःपर्ययज्ञानावरणकर्मका क्षयोपशम होनेपर प्रकट होते हैं। अतः इनमें होनेवाला

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पदार्थका प्रतिभासन स्वसापेक्ष होनेपर भी एक तो मात्र रूपी पदार्थका होता है। दूसरे वह प्रतिभासन द्रव्य, क्षेत्र, काल और भावकी मर्यादा लिए हुए होता है। यह बात तत्त्वार्थसूत्रके "रूपिष्ववधेः" (१-२७) व "तदनन्तभागे मनःपर्ययस्य" (१-२८) दोनों सूत्रोंसे जानी जाती है।

३—यतः जीवमें केवलज्ञान समस्तज्ञानावरणकर्मका सर्वथा क्षय होनेपर प्रकट होता है, अतः निराबाध होनेसे उसमें संयुक्त या बद्धपदार्थोंका संयुक्त या बद्धरूपसे प्रतिभासन न होकर पृथक्-पृथक् ही होता है जबकि जीवमें मतिज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान उस-उस ज्ञानावरणकर्मका क्षयोपशम होनेपर प्रकट होते हैं, अतः बाधासहित होनेसे उनमें संयुक्त या बद्ध पदार्थोंका प्रतिभासन तो संयुक्त या बद्धरूपमें ही होता है व असंयुक्त व अबद्ध पदार्थोंका प्रतिभासन असंयुक्त या अबद्धरूपमें (पृथक्-पृथक्‌रूपमें) ही होता है। जैसे इन तीनों ज्ञानोंमें दूध और जलके मिश्रणमें तो दूध और जलका मिश्रितरूपसे ही प्रतिभासन होता है और पृथक्-पृथक्‌रूपमें विद्यमान दूध और जलका प्रतिभासन पृथक्-पृथक् ही होता है। इसी तरह अवधिज्ञान और मनःपर्यज्ञानमें दो आदि संख्यात, असंख्यात और अनन्त अणुओंके स्कन्धरूपको प्राप्त अणुओंका प्रतिभासन पिण्डरूपसे ही होता है व पृथक्-पृथक्‌रूपमें विद्यमान अणुओंका प्रतिभासन पृथक्-पृथक् रूपसे ही होता है।

इससे निर्णीत होता है कि जहाँ केवलज्ञानमें संयुक्त या बद्ध पदार्थोंका प्रतिभासन संयुक्त दशामें या बद्ध दशामें संयुक्त या बद्धरूपसे न होकर पृथक्-पृथक् रूपसे होता है वहाँ मतिज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानमें अपने-अपने विषयभूत संयुक्त और बद्ध पदार्थोंका प्रतिभासन पृथक्-पृथक्‌रूपसे न होकर संयुक्त और बद्धरूपसे ही होता है। यही कारण है कि आचार्य कुन्दकुन्दने नियमसारके उपयोगप्रकरण[1]में सभी क्षायोपशमिक ज्ञानोंको विभावज्ञानकी व क्षायिकपनेको प्राप्त केवलज्ञानको स्वभावज्ञानको संज्ञा दी है। इस विषयको मैंने जयपुर (खानिया) तत्त्वचर्चाकी समीक्षाके प्रथम भागमें प्रश्नोत्तर-४ के प्रथम दौरकी समीक्षामें स्पष्ट किया है।

पूर्वमें यह बात बतलायी जा चुकी है कि जीवमें मतिज्ञान और श्रुतज्ञान दोनों एकसाथ अनादिकालसे विद्यमान हैं। तथा किसी-किसी जीवमें मतिज्ञान और श्रुतज्ञानके साथ अवधिज्ञानका या मनःपर्ययज्ञानका अथवा अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञान दोनोंका भी विकास हो जाता है। परन्तु जीवमें जब केवलज्ञानका विकास होता है तब मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानका अभाव हो जाता है। इससे निम्नलिखित तथ्य फलित होते हैं—

---

१. जीवो उवओगमओ उवओगो णाणदंसणो होइ।
णाणुवओगो दुविहो सहावणाणं विभावणाणंत्ति ॥१०॥
केवलमिंदियरहियं असहायं तं सहावणाणंत्ति।
सण्णाणिदरवियप्पे विहावणाणं हवे दुविहं ॥११॥
सण्णाणं चउभेदं मदिसुदओही तहेव मणपज्जं।
अण्णाणं तिवियप्पं मदियाईभेददो चेव ॥१२॥
तह दंसण उवओगी ससहावेदर-वियप्पदो दुविहो।
केवलमिंदियरहियं असहायं तं सहावमिदि भणिदं ॥१३॥
चक्खू अचक्खू ओही तिण्णि वि भणिदं विभावदिच्छित्ति। गाथा १४ का पूर्वार्थ।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

१—मतिज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानके साथ श्रुतज्ञानका सद्भाव रहनेके कारण मतिज्ञानी, अवधिज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानी जीव ता मतिज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानसे ज्ञात पदार्थका उस श्रुतज्ञानके बलसे विश्लेषण भी करते हैं, परन्तु केवलज्ञानके साथ श्रुतज्ञानका अभाव रहनेसे केवलज्ञानी जीव केवलज्ञानसे ज्ञात पदार्थका कदापि विश्लेषण नहीं करते हैं।

२—मतिज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानके साथ श्रुतज्ञानका सद्भाव रहनेके कारण मतिज्ञानी, अवधिज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानी जीव श्रुतज्ञानके बलसे एक ही पदार्थमें गुण-गुणीभावका भेद करके गुण और गुणीमें आधाराधेयभावका विश्लेषण करते हैं, तथा एक ही पदार्थमें भेदके बलपर उपादानोपादेयभावरूप कार्य-कारणभावका भी विश्लेषण करते हैं। इतना ही नहीं, तादाम्यसम्बन्धाश्रित अन्य सभी प्रकारके सम्बन्धोंका भी विश्लेषण करते हैं, परन्तु केवलज्ञानके साथ श्रुतज्ञानका अभाव रहनेके कारण केवलज्ञानी जीव एक ही पदार्थमें भेदकी अवास्तविकताके कारण उक्त सभी प्रकारके सम्बन्धोंका विश्लेषण नहीं करते हैं।

३—मतिज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानके साथ श्रुतज्ञानका सद्भाव रहनेके कारण मतिज्ञानी, अवधिज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानी जीव उस श्रुतज्ञानके बलसे नाना पदार्थोंमें भी आधाराधेयभाव और निमित्त-नैमित्तिकभावरूप कार्य-कारणभाव आदि संयोगसम्बन्धाश्रित सभी प्रकारके सम्बन्धोंका विश्लेषण करते हैं। परन्तु केवलज्ञानके साथ श्रुतज्ञानका अभाव रहनेके कारण केवलज्ञानी जीव नाना पदार्थोंमें संयोगसम्बन्धाश्रित उक्त सभी प्रकारके सम्बन्धोंका कदापि विश्लेषण नहीं करते हैं।

४—मतिज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानके साथ श्रुतज्ञानका सद्भाव रहनेके कारण मतिज्ञानी, अवधिज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानी जीव उस श्रुतज्ञानके बलसे अर्थ और शब्दमें वाच्य-वाचकभाव व पदार्थ व ज्ञानमें ज्ञेय-ज्ञायकभाव आदि विविध प्रकारके सम्बन्धोंका भी विश्लेषण करते हैं, परन्तु केवलज्ञानके साथ श्रुतज्ञानका अभाव रहनेके कारण केवलज्ञानी जीव इस प्रकारके सम्बन्धोंका विश्लेषण नहीं करते हैं।

इस विवेचनसे यह निष्कर्ष निकलता है कि जहाँ मतिज्ञानी, अवधिज्ञानी और मनःपर्ययज्ञानी जीवोंका कार्य मतिज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानके द्वारा पदार्थोंको जाननेका तथा श्रुतज्ञानके द्वारा विविध प्रकारके सम्बन्धोंका विश्लेषण करना है वहाँ केवलज्ञानी जीवका कार्य केवलज्ञानके द्वारा पदार्थोंको जानना तो है, परन्तु श्रुतज्ञानका अभाव होनेसे उक्त किसी भी प्रकारके सम्बन्धका विश्लेषण करना उसका कार्य नहीं है।

पुद्गलोंका आवश्यक विवेचन

जिस प्रकार कालद्रव्य अणुरूप हैं उसी प्रकार पुद्गल द्रव्य भी अणुरूप हैं। दोनोंमें विशेषता यह है कि जहाँ कालद्रव्य असंख्यात हैं और निष्क्रिय हैं वहाँ पुद्गल द्रव्य अनन्त हैं और क्रियाशील भी हैं। काल और पुद्गल दोनों द्रव्योंमें एक विशेषता यह भी है कि जहाँ सभी कालाणु स्वभावदृष्टिसे समान हैं वहाँ सभी पुद्गलाणु स्वभावदृष्टिसे समान नहीं हैं। आगे इसी बातको स्पष्ट किया जाता है—

प्रत्येक पुद्गलाणुमें स्वभावतः काला, पीला, नीला, लाल और सफेद इन पाँच वर्णोंमेंसे कोई एक वर्ण रहता है। अतः सभी पुद्गलाणु वर्णकी अपेक्षा पाँच प्रकारके हो जाते हैं। वर्णकी अपेक्षा पाँच प्रकारके सभी पुद्गलाणुओंमेंसे प्रत्येक पुद्गलाणुमें खट्टा, मीठा, कडुवा, चरपरा और कषायला इन पाँच रसोंमें कोई एक रस रहता है। अतः सभी पुद्गलाणु पाँच वर्णों और पाँच रसोंकी अपेक्षा ५×५=२५ प्रकारके हो जाते हैं। इन २५ प्रकारके पुद्गलाणुओंमेंसे प्रत्येक पुद्गलाणुमें सुगन्ध और दुर्गन्ध दो गन्धोंमेंसे कोई एक गन्ध

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

रहता है। अतः सभी पुद्गलाणु इस अपेक्षासे २५ × २ = ५० प्रकारके हो जाते हैं। इन ५० प्रकारके पुद्गलाणुओंमेंसे प्रत्येक पुद्गलाणुमें स्निग्ध और रूक्ष इन दो स्पर्शोंमेंसे कोई एक स्पर्श रहता है। इस प्रकार सभी पुद्गलाणु इस अपेक्षासे ५० × २ = १०० प्रकारके हो जाते हैं। इस १०० प्रकारके पुद्गलाणुओंमेंसे प्रत्येक पुद्गलाणुमें शीत और उष्ण इन दो स्पर्शोंमेंसे कोई एक स्पर्श रहता है। अतः सभी पुद्गलाणु इस अपेक्षासे १०० × २ = २०० प्रकारके हो जाते हैं।

यहाँ यह विशेष ज्ञातव्य है कि आगममें स्पर्शके स्निग्ध, रूक्ष, शीत, उष्ण, हल्का, भारी, कठोर और कोमल इस प्रकार आठ भेद बतलाये गये हैं। किन्तु सभी पुद्गलाणु यतः एकप्रदेशात्मक ही होते हैं। अतः उनमें स्निग्ध, रूक्ष, शीत और उष्ण ये चार स्पर्श रहते हुए भी हल्का, भारी, कठोर, और कोमल इन चार स्पर्शोंका सद्भाव सम्भव नहीं है, क्योंकि हल्का, भारी, कठोर और कोमल ये चार स्पर्श नानाप्रदेशात्मक पुद्गल वस्तुमें ही सम्भव होते हैं। इतना अवश्य है कि प्रत्येक पुद्गलाणुमें जो स्निग्ध और रूक्ष दो स्पर्शोंमेंसे कोई एक स्पर्श पाया जाता है, उसके आधारपर एक पुद्गलाणु दूसरे पुद्गलाणुके साथ बन्धको भी प्राप्त होता रहता है। जैसा कि तत्त्वार्थसूत्रके "स्निग्धरूक्षत्वाद्बन्धः" (५-३३) सूत्रसे स्पष्ट है। इस प्रकार दो आदि संख्यात, असंख्यात और अनन्त पुद्गलपरमाणु जब परस्पर बन्धको प्राप्त हो जाते हैं तब उनमें हल्का, भारी, कठोर और कोमल इन चार स्पर्शोंके सद्भावकी सम्भावना हो जाती है। यही कारण है कि तत्त्वार्थसूत्रके "अणवः स्कन्धाश्च" (५-२५) सूत्रमें पुद्गलके अणु और स्कन्ध दो भेद बतलाये गये हैं। यहाँ यह भी ज्ञातव्य है कि हल्का और भारी तथा कोमल और कठोर परस्परसापेक्ष होकर ही उस-उस स्पर्शरूपताको प्राप्त होते हैं।

पुद्गलोंमें पृथ्वी, जल अग्नि और वायु ये चार स्कन्ध तो प्रत्यक्ष अनुभवमें आते हैं। इनका निर्माण भी पुद्गलाणुओंके परस्पर बन्धके आधारपर ही समझना चाहिए। गोम्मटसार जीवकाण्डकी गाथा ६०२ में जो बादर-बादर, बादर, बादर-सूक्ष्म, सूक्ष्म-बादर, सूक्ष्म और सूक्ष्म-सूक्ष्म ये ६ भेद पुद्गलोंके बतलाये गये हैं, उनमेंसे पृथ्वी, काष्ठ, पाषाण आदि बादर-बादर स्कन्ध हैं। जल, तेल आदि बादर स्कन्ध हैं। छाया, आतप चाँदनी आदि बादर-सूक्ष्म स्कन्ध हैं। शब्द, गन्ध, रस आदि सूक्ष्म-स्थूल स्कन्ध हैं। ज्ञानावरणादिकर्म सूक्ष्म स्कन्ध हैं और अखण्ड पुद्गल परमाणु सूक्ष्म-सूक्ष्मरूपमें अणु ही है।

गोम्मटसार जीवकाण्डकी गाथा ५९३-९४ में पुद्गलोंके वर्गणाओंके रूपमें २३ भेद भी बतलाये गये हैं। इनमेंसे वर्ग सूक्ष्म पुद्गलाणुरूप है और एकजातीय वर्गोंके समूहका नाम वर्गणा है। इस तरह २३ वर्गणाओंकी व्यवस्था आगमके अनुसार ज्ञातव्य है। यहाँ आवश्यक जानकर आहारवर्गणा, तैजसवर्गणा, भाषावर्गणा, मनोवर्गणा और कार्मणवर्गणाके विषयमें स्पष्टीकरण किया जाता है।

आहारवर्गणाके तीन भेद हैं। एक आहारवर्गणा वह है जिससे औदारिक शरीरकी रचना होती है। दूसरी आहारवर्गणा वह है जिससे वैक्रियिक शरीरका निर्माण होता है और तीसरी आहारवर्गणा वह है जो आहारकशरीररूप परिणत होती है। इनके भी यथासम्भव अनेक प्रकार आगमके आधारपर जान लेना चाहिए। जैसे तिर्यन्चोंकी नाना जातियाँ देखनेमें आती हैं तो उनके शरीरका निर्माण भी भिन्न-भिन्न प्रकारकी औदारिक वर्गणाओंसे होता है। तैजसवर्गणासे तैजस शरीरका निर्माण होता है। भाषावर्गणासे शब्दकी रचना होती है व मनोवर्गणासे द्रव्यमनका निर्माण होता है। इसीप्रकार कार्मणवर्गणायें मूलमें ज्ञानावरण, दर्शनावरण, वेदनीय, मोहनीय, आयु, नाम, गोत्र और अन्तरायके भेदसे आठ प्रकारकी हैं व इनके बन्धकी अपेक्षा १४६ उत्तरभेद हैं। इनसे ही पृथक्-पृथक् उस-उस कर्मप्रकृतिका निर्माण होता है।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

पुद्गलके विषयमें इतना जो विवेचन किया गया है उसका प्रयोजन यह है कि जो अणुरूप अनन्त-पुद्गल हैं वे ही कालाणुओंकी तरह वास्तविक द्रव्य हैं, अतः उनका प्रतिभासन ही केवलज्ञानमें होता है तथा पुद्गलाणुओंकी जितनी परस्पर संयुक्त या बद्ध दशाएँ हैं वे वास्तविक नहीं हैं अर्थात् उपचरित हैं, अतः पुद्गलाणुओंकी संयुक्त या बद्ध दशामें भी पृथक्-पृथक् पुद्गलाणुका ही प्रतिभासन केवलज्ञानमें होता है। उन संयुक्त या बद्ध दशाओंका प्रतिभासन केवलज्ञानमें नहीं होता। इतना अवश्य है कि पुद्गलाणुकी संयुक्त या बद्ध दशाएँ लौकिक और आध्यात्मिक क्षेत्रोंमें उपयोगी हैं अतः उन्हें भी उपचरितरूपसे वास्तविक कहा जाता है। तथा उनका यथासम्भव प्रतिभासन भी मतिज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानमें होता है व श्रुतज्ञान द्वारा उनका विश्लेषण भी होता है। यह सब विषय पूर्वमें स्पष्ट किया जा चुका है।

इसप्रकार "केवलज्ञानकी विषय-मर्यादा" प्रकरणमें अब तक जो विवेचन किया गया है उससे यह बात अच्छी तरह स्पष्ट हो जाती है कि विश्वमें एक आकाश, एक धर्म, एक अधर्म, असंख्यात काल, अनन्त जीव और अनन्त पुद्गलके रूपमें जितने पृथक्-पृथक् स्वतंत्रसत्ताधारी पदार्थ विद्यमान हैं वे सब पदार्थ परस्पर संयुक्त रहते हुए भी तथा जीव और पुद्गल एवं पुद्गल और पुद्गल परस्पर बद्ध रहते हुए भी अपनी-अपनी द्रव्य-रूपता, गुणरूपता और स्वप्रत्यय व स्व-परप्रत्यय पर्यायरूपतामें ही रह रहे हैं, क्योंकि प्रत्येक पदार्थकी अपनी-अपनी द्रव्यरूपता, गुणरूपता और स्वप्रत्यय व स्व-परप्रत्यय पर्यायरूपता संयुक्त या बद्ध दशामें भी एक दूसरे पदार्थकी द्रव्यरूपता और स्वप्रत्यय व स्व-परप्रत्यय पर्यायरूपतासे भिन्न तदात्मक एकत्व प्राप्त धर्म है तथा प्रत्येक पदार्थकी ऐसी द्रव्यरूपता, गुणरूपता और स्वप्रत्यय व स्व-परप्रत्यय पर्यायरूपताका प्रतिभासन ही केवलज्ञानमें होता है। इनके लौकिक व आध्यात्मिक क्षेत्रोंमें उपयोगी होनेके कारण उपचरितरूपसे वास्तविक संयुक्त दशा या बद्ध दशाका प्रतिभासन केवलज्ञानमें नहीं होकर मतिज्ञान, अवधिज्ञान और मनःपर्ययज्ञानमें ही होता है। एवं विश्लेषण श्रुतज्ञान द्वारा होता है। अतएव इस विवेचनको ध्यानमें रखकर ही कार्तिकेयानुप्रेक्षा गाथा ३२१-२२ का, पद्मपुराण सर्ग ११० के श्लोक ४० का और कविवर भैया भगवतीदासजीके "जो जो देखी वीतरागने सो सो होसी वीरा रे" इस कथनका तथा इसी प्रकारके अन्य आगम-वचनोंका अभिप्राय ग्रहण करना चाहिए। ऐसा करनेसे ही वर्तमानमें जैनागमका वास्तविक रहस्य समझमें आ सकता है व सोनगढ़ द्वारा स्थापित की गयी गलत व्यवस्थाओंसे दिगम्बर जैन समाजमें जो उथल-पुथल मच गयी है वह शांत हो सकती है। इस विषयमें वर्तमान पीढ़ीके विद्वानोंका यह उत्तरदायित्व है कि वे जैन संस्कृतिके आगममें प्रतिपादित सिद्धान्तोंका निष्कषायभावसे सम्यक् उद्घाटन करें।

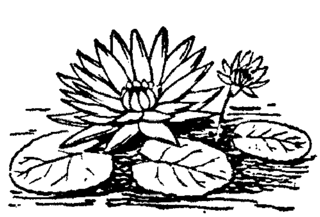

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org